शिक्षा विभाग राजस्थान
के लिए

कृष्ण जनसेवी एण्ड को
दाऊजी मंदिर भवन, बीकानेर, राज

रेत का घर

सम्पादक.

प्रकाश जैन

आमुख

शाग्र अपनी यात्रा स्वयं करत है, पर आज जा कुछ छप रहा है वह कब प्रासगिक होगा, इसे काल के अलावा कोई नही जान सकता। साहित्य म अभिव्यक्ति बाधित निर्णया स ऊपर होती है। पक्ष विपक्ष की यात्राए अपने युग क साथ उपराम ग्रहण करती हैं, तब साहित्य मे केवल वही शेप रह जाता है जा मानवीय होता है। मानवीयता के इसी सावभौम पक्ष को विविध रूपा मे उजागर करन क लिए हमार राज्य म शिक्षक अपनी रचनाधर्मिता का सजोये वर्षों स आग बढे चले जा रहे हैं। मुझे बताते हुए खुशी है कि हमारे सृजनशील शिक्षक साहित्यकारा की अब तक 96 पुस्तकें विभाग द्वारा प्रकाशित हो चुकी है।

5 सितम्बर, शिक्षक दिवस के रूप म पूर राष्ट्र म मनाया जाता है। राजस्थान म शिक्षका क लिए अपनी लेखन क्षमता का अभिव्यक्ति देन का यह अवसर है। इसी दृष्टि स आज के पुनीत पव पर शिक्षका की पाच कृतिया आप लोगा क हाथा म सौंपने का गौरव मुझे मिला है। हमारे प्रात के मनीषी साहित्यकारा ने इन्ह सपादित किया है। ये सभी

साहित्यकार भारतीय साहित्य मे अपनी अनुपम देन के लिए विख्यात है। ये पाच सग्रह इस प्रकार हैं—

1	ढाइ अक्खर	कहानी सग्रह	सपा आलम शाह खान
2	रेत का घर	कविता सग्रह	सपा प्रकाश जैन
3	रेत के रतन	बाल साहित्य	सपा मनोहर प्रभाकर
4	रेत रो हेत	राजस्थानी विविधा	सपा हीरालाल माहेश्वरी
5	बूद-बूद स्याही	गद्य विविधा	सपा पुरुषोत्तमलाल तिवारी

उक्त कृतियो म जो कुछ प्रकाशित हुआ है उसकी शक्ति और सामर्थ्य उन लेखको की है और वह इन कृतियो म निहित है। मुझे केवल इन्ह प्रस्तुत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और मै साहित्य ससार के समक्ष इन्ह विनीत भाव से प्रस्तुत करता हू।

ता॰ प्र॰ जोशी

शिक्षक दिवस 1986

(तारा प्रकाश जोशी)
निदेशक
प्राथमिक एव माध्यमिक शिक्षा
राजस्थान बीकानेर

कुछ कहना है मुझे

कविता और काव्य सृजन पर इतना कुछ लिखा गया है लिखा जाता रहा है कि चर्चा के माध्यम से इस पर और कुछ कहा जाना, लगता है सिर्फ बातों को दुहराना भर है या फिर अपने समझ सोच से व्यर्थ ही पाठकों को दिग्भ्रमित करना है।

वस भी यह सही है कि कविता स्वयं बोलेगी, अपने संवेदन और सोच के कपाट खोलेगी। हम बोलें न बोलें।

मेरे एक गीतकार मित्र लगातार कहते रहे हैं कि इधर की कविता ने जन सम्पर्क खो दिया है। पर मैं पूछना और जानना चाहता हूँ कि क्या कालिदास का जन सम्पर्क था और है? जब कि आज कविता विद्वानों की भाषा और अभिव्यक्ति न होकर, जन भाषा की सहज सरलतम अभिव्यक्ति होती जा रही है उनसे निरंतर जुड़ने की प्रक्रिया में है। खैर।

उनकी मान्यता है कि सूर, मीरा, तुलसी अमर रचनाकार हैं इसलिए कि वे जनता से जुड़े रहे। वात्सल्य, समर्पण और मानवीय आदर्शों के प्रति एक गहरी और अद्भुत समझ उनमें थी। गलत नहीं है यह बात। और यह सार्वजनीन सत्य है कि शताब्दियों की सीमा को लांघकर जीवित हैं, रहेंगे।

पर वे क्यों जीवित हैं? साहित्य सरोकार के कारण ही। या फिर इस बूढ़े देश की आध्यात्मिकता प्रमुख हो गई। अंध भक्ति धार्मिक अंध विश्वास के प्रभाव से कैसे इन्कार किया जा सकता है(!) जो आज हमारे सामने राक्षसी प्रश्न-चिह्न की तरह खड़ा है। इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं सूर मीरा और तुलसी के समर्पित सृजन और महात्म्य को नहीं स्वीकारता हूँ। स्वीकार हा, स्वीकार ही साहित्य और कला की पहली शर्त है। विज्ञान नये को स्वीकारता और पिछले को काटता है पर साहित्य और कला अपने विगत को काटते नहीं, कड़ी से कड़ी जोड़ते चलते हैं।

किन्तु यह स्वीकार करने में भी हमें संकोच नहीं करना चाहिये कि सोच और संवदना के स्तर पर हम लगभग दरिद्र होते जा रहे हैं। आत्म केन्द्रित। राष्ट्रीय स्तर पर बड़ी से बड़ी दुर्घटना, एक बड़ा हादसा होने के बाद भी हम झुरेरती नहीं। कितना बड़ा मजाक है सामाजिक सन्दर्भ

मे कि भोपाल के गैस काड, असम और पजाब की दुर्दान्त स्थितिया, उसकी प्रतिक्रिया म होने वाले दगा, साम्प्रदायिकता की अग्नि पर हमारा रचनाकार लगभग खामोश है। अपवाद हो सकते हैं। पर अपवाद के आधार पर ही सच्चाई को नकारा नहीं जा सकता।

कैसे हो गया यह सब ! क्या हो गया ऐसा जैसा पहले नहीं था। जिनको फूल और पत्ती आसू और ओस, बाढ और अकाल, आदमी और उसकी मन्त्रणा गहरे तक छू जाती थी झकझोर देती थी, आन्दोलित और उद्वेलित कर देती थी नागासाकी और हिरोशिमा की प्रागणिक दुर्घटना ने जिन्हें आतकित कर दिया था, वियतनाम और हो-ची-मिन्ह जिन्हे अपने और निखालिस अपने लग रहे थे, स्वतन्त्रता और आदमी की आजादी जिनका सपना और दृष्टि थी आज वे ही अपने देश प्रदेश के शर्मनाक और जानलेवा हादसो को सन्नाटा का सौंपे दे रहे है।

इस परिप्रेक्ष्य मे मैं अपने गीतकार मित्र की बात का भरपूर समर्थन कर रहा हूँ कि हमारा चरित्र ही खो गया है। लगता है कि हम निरन्तर यान्त्रिकता को समर्पित होते जा रहे हैं। हमारे भीतर का आदमी अकाल-मृत्यु को समर्पित हो गया है। हम वहा आ गये हैं जहा साहित्य और कला का काम नही होता। बल्कि अक्सर लगता है कि कला और साहित्य का समय ही नही है यह।

या फिर हमे जानना समझना और गहराई म अनुभव करना चाहिये कि आज ही साहित्य और कला की सर्वाधिक आवश्यकता है।

पर क्या हुआ ऐसा कि यह साहित्य और कला का युग नही रहा। सिर्फ यन्त्र और मशीन हमारे जीवन के केन्द्र म आ गई। हम आन्तरिक सुख को भूलकर केवल बाहरी आडम्बर और सस्ती मनोरजकता के शिकार हो गये ! क्या हुआ ऐसा कि हम अपनी सवेदना खोते जा रहे हैं और जीवन मे विष बीज बोते जा रहे हैं ! क्या हुआ ऐसा कि—

"क्या हाल पूछते हैं दर्दे दिमाग का
बेचता हू आईने अधो के शहर म

ये प्रश्न-चिह्न है जिन पर शिक्षाविदो और शिक्षको को आन्तरिक सकट की तरह समझना सोचना चाहिये। उन्ही पर यह गुरुतर दायित्व है। सिर्फ इसलिये कि विगत का जानन-व्याख्यायित करने के साथ ही वर्तमान की अपेक्षाओ और भविष्य को शक्ल देने को भी प्रतिबद्ध है वे। सृजन और सम्भावनाओ के द्वार उन्हे ही खोलने हैं। पता नहीं कितनी

105410
5-5-89

वडी वडी बातें कही जाती रही हैं, ग्राज तक कवि ग्रौर कविता के सदर्भ मे। कोई कवि को द्रष्टा ग्रौर स्रष्टा मानता रहा है ग्रौर कोई कविता को हथियार! कोई उसे समय का दस्तावेज मानता है। कोई मनोरंजन का ग्राधार। कोई उसे मानवीय सवेदन की ग्रभिव्यक्ति मानता है तो कोई उसे सभ्यता का इतिहास लेखन।

पर मुझे लगता है कि कविता सिर्फ ग्रादमी को सस्कारित करने का माध्यम है या फिर यातना शिविर के बाहर ग्रा जाने की उत्कट जिजीविषा। कविता जिन्दगी को सही शक्ल देने ग्रौर मानवीयता का रूप ग्रहण करने का ग्राकार देती है। यह समय ग्रौर सवेदना का एक दस्तावेज है जो युगीन हो कर भी सनातन, शाश्वत होता है।

पर इस कविता सग्रह का सम्पादन करते हुए मुझे बेहद कष्टप्रद स्थितियो से गुजरना पडा है। एक ग्रोर शिक्षा विभाग के ऐसे प्रयत्नो को साधुवाद देने का मन होता है तो दूसरी ग्रोर ग्रपनी दरिद्रता पर क्षोभ होता है। समझ मे नही ग्राता कि शब्द ग्रौर भाषा से जुडे हुए शिक्षक भी उनमे जुडे हुए क्यो नही हैं? समझ मे नही ग्राता कि ग्रवसर पाकर भी शक्ति-सचय ग्रौर चेतना की हिलोर हमारे भीतर क्यो नही जागती? चेतना शून्य हो जाना तो जिन्दगी को नकारना है। मुझे लगता है कि हमारा शिक्षक ही ग्रध्ययन से विरत होता जा रहा है। इसीलिये वह शब्द भाषा ग्रौर साहित्य की भाव धारा से ग्रलग थलग होता जा रहा है।

एक ग्रोर सरकार नयी शिक्षा नीति उसकी सार्वजनीन उपादेयता की बात कर रही है, नये भविष्य के सपने सजो रही है ग्रौर नयी पौध को नये सपने दिखा रही है। दूसरी ग्रोर हमारे सृजनशील ग्रध्यापकों का सोच, समझ ग्रौर मानसिकता है, जो एक प्रश्न चिह्न है।

इस सग्रह का सम्पादन करते हुए मुझे लगा कि ग्रनेकानेक प्रधानाध्यापक ग्रौर वरिष्ठ ग्रध्यापक शब्द, भाषा ग्रौर सोच समझ के नाम पर वास्तविकता ग्रौर स्थितियो मे जुडने की मन स्थिति मे नही हैं। शुद्ध लिखना भी उनके लिये सम्भव नही है। जबकि हिन्दी सर्वाधिक सरल भाषा है। उच्चारण शुद्ध हो तो ग्रशुद्ध लिखा ही नही जा सकता। पर ग्रनेकानेक शिक्षक ग्रशुद्ध लिखते हैं ग्रौर लगता है कि शब्द के प्रयोग के सम्बन्ध मे तो जैसे उनकी कतई कोई ग्रातरिक रुचि नही। ऐसी स्थिति मे कला ग्रौर साहित्य की उनकी मानसिकता ग्रौर समझ क्या हो सकती है, यह ग्रासानी से समझा जा सकता है।

रेत का घर

बगाल बिहार ग्रौर दक्षिणवासी नही जानते कि मरुस्थल क्या होता

है ? रेत मे बडे टीले कैसे होते हैं ? यह अलग बात है कि उत्तर भारतीय हिमालय मे गिला खण्डा को देख आएँ। पर मरुस्थल से उनकी पहचान नहीं ह। वे नही जानत कि मरुस्थल म पड पौधे तो क्या गाव तक नहीं होते। मीलो की दूरी तक फैली कही कही दो तीन अधेरी झोपडियाँ होती ह जिन्हे ढाणियाँ कहा जाता है। जहा वर्षा आती है वहा आती। छह सात वष के बच्चे नही जानत कि बादल कैसा होता है वर्षा कैसी होती है। परिवार के आधे सदस्य मीलो दूर स सिफ पानी प्राप्त करने म उम्र गुजार दते ह। बीसवी सदी के उत्तरार्द्ध मे भी यह त्रासदी भोगनी पड रही है राजस्थान के अनगिनत परिवारो को।

इसके उपरान्त भी आश्चर्य है कि अफ्रीका की तरह तल्ख और त्रासदायी रचनाए क्या नही लिखी जा रही। शायद इसलिए कि राजस्थान के रचनाकारो को भी इस मरणान्तक कष्टप्रद जीवन की अनिवार्यताओ म समीप से साक्षात्कार करने का अवसर नही मिल रहा।

मीलो तक फैले बालू के टीबो का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि बाडमेर-जसलमेर की एक ससदीय सीट का क्षेत्रफल केरल राज्य से अधिक है। रेत और भुरभुरी रत। पड पौध नही, कही कही कोई झाडी या रूखा सूखा खेजडा। दूर दूर।

और दूसरी ओर पठार जो कभी हर भरे थे। अब हमारी ही स्वार्थी प्रवत्ति के कारण अपना रूप सौंदय खोत जा रहे हैं। हमारी भौतिकी भूख ध्य है। पर ऐसा नही है कि राजस्थान का रचनाकार निश्चय रचनाकार अखिल भारतीय रचनाकार से कुछ कम सवकालीन है और अभिव्यक्ति मे अपनी सही पहचान नही बना पा रहा है। इस सग्रह की कविताए प्रमाणित कर रही हैं कि व पूणत जागरूक है देश प्रदेश की समस्याओ पीडा और मानवीय सवेदन से। गत वष की भोपाल की गैस त्रासदी को अभिव्यक्त किया था मानवीय पीडा की साझेदारी मे। और इस वष प्रकृति के निरतर कोप की यातना से साक्षात्कार करते हुए ये कहते हैं—

'और गाव/इस बार फिर तगडा गये है/
रूक गयी है वहा पर धरती/ताल/पोखरे
और नदिया/यहा तक कि कुए भी/भाय
भाय कर रहे है और
तब कराह उठती है/इलाके की प्रसिद्ध सूखी नदी/
और अपने खूबसूरत अतीत को/पीठ पर लादकर/
विज्ञान की शोध यात्राओ म/गुम हो जाती है

—समर मेवाडी

आज जिस तरह का विरोधाभासी जीवन जी रहे है हम, कथनी और करनी के अन्तर से उत्पन्न यन्त्रणा को गहराई से महसूसते हुए नीले आसमान को सम्बोधित कर रहे है, भगवतीलाल व्यास—

"मगर तुम एक आत्मीय रंग लिए हुए भी/
अनात्मीय आचरण करते रहे हर बार/
क्या होता है किसी रंग और उसके प्रभाव मे इतना अन्तर"

प्रारम्भ मे सोचा था कि शिल्प के भिन्न प्रकारो के आधार पर कविता सकलन को अलग अलग खण्डो मे विभाजित कर दिया जाना चाहिये। पर फिर लगा कि मात्र शिल्प के आधार पर कविता और कविता मे भेद नही किया जा सकता। चाहे आधुनिक कविता हो या गीत या गजल। कविता को अलग-अलग चौखानो मे बाट देना बिल्कुल वैसा ही है जैसे आदमी को देश-प्रदेश की सीमाओ मे बाधकर, आदमी को आदमी से जुदा कर दिया जाय।

नगरीय सभ्यता के मुखौटा वाले नये स्वरूप मे चेहरे ही चेहरे हैं। परिचित, पर एकदम अपरिचित। आदमी अपने आपको बेहद तन्हा और अकेला अनुभव करने लगा है और चुपचाप सन्नाटे को ओढ़े रहना जागरूक रचनाकार के लिये सम्भव नही है। इसीलिये रचनाकार कहते हैं—

"मुस्कराते अधर, हँसती आख के काजल तले
प्यार केवल रस्म भर है, शहर मे आकर लगा"

—कुन्दनसिंह सजल

"इस बूढे शहर की /जर्जर शहरकोट/नक्काशी गवाक्षो वाले/
सगमरमरी महल/और बदबूदार झील को देखकर/
सोच मे मत पडो/शहर इनमे कही नही है'

—भगवतीलाल व्यास

'जिन लोगो ने/घनी छाह मे पनाह ली थी/
फल खाये थे/छाल पहनी थी/उन्होने ही/
यह हरा-भरा/सवेदनाओ का शहर/उजाड दिया/
और बो दिए पत्थर/देखते-देखते/उग आया
मकानो का घना जगल"

—माधव नागदा

आज के जीवन की त्रासदी, प्राथमिक अनिवार्यताओ से निरतर जूझने के कष्ट और दुख को महसूस कर रहा है सामान्य आदमी। सजग रचनाकार जनसामान्य की इस व्यथाकथा को वाणी न दे यह कैसे सम्भव है! सामान्य जन केवल चर्चा करके ही अपने आपको थोडा हल्का महसूस करने लगता है और आज की पत्रकारिता चटकारे लेने और

रामाचव बंहानिया गुनाकर अपना व्यावसायिक धम निबाह रही है। पर रचनाकार सजग है और कम से कम शब्दों में अपने आपको, स्थितियों को उलीच रहा है—

"पर अब य मकान झुक गया है/टूटे नीम की तरह/
उखड गय हैं प्लास्तर/टपकते हैं टूटे सपनों की तरह से इसके
रंग रोगन/सफेद हो गई है/ इसके आखो की पुतलियां/
हिलने लगी है पैरों की धमक से इसकी चटचटाती नस/
गिरेगा/किसी दिन/हम सबको लेकर यह मकान"

—उमश अपराधी

'भीड/एक अधी नागन/एक सैलाब/
एक ताव/एक आग/मशालें थामे/
जुलूस की शक्ल में/बढ रही है आग/
बढ़ा रही है कदम/निरन्तर'

—श्यामसुदर भारती

"शैतानों का कोई धम नही होता/
य किसी भी रंग/रूप/जाति के हो सकते हैं/
या फिर किसी के भी नही होते"

—भागीरथ भार्गव

'प्यास की सलीब पर लटककर/
मीठे पानी के भरने की कल्पना करने से/
कुछ नही होगा

—मन्दुन मलिक खान

सभी रचनाकारों पर लिख पाना इस संक्षिप्त सी भूमिका में सम्भव नही है। अत जिनके उद्धरण नही दे सका, उनसे क्षमा चाहते हुए मैं अनुभव कर रहा हूं कि अनेक शिक्षक रचनाकारों में अभिव्यक्ति की सम्भावना-साहस है। अपने आपको वे निरन्तर माजते, अध्ययन रत रहे, तो हम सभी गौरवान्वित होंगे।

वैसे यह रेत का घर नयी सम्भावनाओं का जनक है। जिसके गर्भ में अगणित खनिज हैं तेल है, जीवन की अनिवार्यताओं को पूरी करने और शक्ल देने के साधन हैं। इसे पानी मिला, जो अब मिलेगा ही, तो यह भुरभुरी बालू जिन्दगी का नया गीत गाएगा।

नाहर बिल्डिंग
तापडदा
अजमेर (राज)

[प्रकाश जैन]

अनुक्रम

कमर मेवाड़ी

अकाल की विभीषिका और गाव

शहर सन्नाटे की आगोश मे
सरगोशिया करने म व्यस्त हैं
और गाव
इस बार फिर लगड़ा गये हैं
और दरक गयी है यहा पर धरती
ताल/पोखरे/और नदिया
यहा तक कि कुए भी
भाय/भाय कर रहे ह।

अब रोजमर्रा की तरह नही जागते गाव
औरत और जवान लडकिया
पेट स रोटिया को बाध कर
चल पडती हैं काम के लिए
सूखे तालाब की खुदाई
चारो ओर मची है भागमभाग

आदमी निकल पडते हैं अलस्सुबह
और मिचमिची आखा
तथा पोपले मु ह वाले बूढे और बुढिया
छोटे बच्चा को डाटते/दुलारते
सभा का इतजार करते
गुजार देते हैं घर गाव मे ही पूरा दिन

गम्भीर रूप स कुपित हो गई है
प्रकृति फिर इस बार
पानी के अभाव मे
फसलें सूख कर गिर पडी है
धरती पर औंध मु ह
भूख और प्यास से

कुलबुला रहे है पशु-पक्षी
हतप्रभ है गाव का आदमी
समझ नही पा रहा है
वह किस तरह करे सामना
साल दर साल पडते इस अकाल का।

△

प्रतीक्षारत नदी

कुछ शब्द उड जाते है आकाश म
सूखे पत्तो की तरह
और धूप
स्फटिक की तरह चमकती रहती है सवत्र

कद्दावर और खूखार भसे
आकाश पाताल को एक करत
चारो दिशाओ म चक्कर लगात
मटर गश्ती करते हुए
अथहीन वार्ताओ म व्यस्त हो जात है

अकालग्रस्त इलाके के
वीरान गावो म एक चिडिया
ढूढती फिरती है पनाह
और उजाड घरो की दहलीज पर
बूढे मृत कुत्तो की दुगन्ध
पूरे इलाके की शिनाख्त बन जाती है

तब कराह उठती है
इलाके की प्रसिद्ध सूखी नदी
और अपने खूबसूरत अतीत को
पीठ पर लाद कर

विनान की गोप गानाम्रो मे
    गुम हो जाती है

ग्रोर फिर नहीं प्रतीक्षा करती है
ग्राकाश म
काले मेघा के मडराने की
ग्रौर देखत देखते
पानी बरसना गुम हो जाता है

धूप बादला के सीन मे दुबक जाती है
पडो की फुनगिया हरियान लगती हैं
ग्रौर धरती पर
खुशहाली की एक शानदार फसल
    लहलहा उठती है

△

भगवतीलाल व्यास

ग्रन्तर

ग्रो नीले ग्रासमान !
तुम गुपचुप क्या करते हो
ऊपर ही ऊपर ?

हमे एक ग्ररसे तक
इसमे कोई दिलचस्पी नहो थी ।
मगर जब से हम मालूम हुग्रा है कि–
हमारे हिस्से की धूप
हमारे हिस्से का पानी
हमारे हिस्से की रोशनी ग्रौर
हमारे हिस्से की चादनी

नगातार कम पडती जा रही है
तब से हम तुम्हे सदेह की
दष्टि मे देखने लगे है ।

ओ नीले आसमान !
हमने तुम्हे समझा था
शात गम्भीर और उदार
अपनी नदिया तालावा
और समुद्रो की तरह ।

हमने जब जब किसी
नदी की आख मे झाका
वह मुस्करा दी थी मा की तरह
हमने जब किसी तालाब को गुहारा
वह पुलक उठा था सहोदर की तरह
और जब जब हमने किसी
समुद्र को निहारा निराशा के क्षणो म
उसने बाहे फैलाइ थी
एक वत्सल पिता की तरह ।

मगर तुम एक आत्मीय रग लिए हुए भी
अनात्मीय आचरण करते रहे हर बार ।
क्या होता है किसी रग और
उसके प्रभाव म इतना अन्तर ?
बताओगे नील आसमान !

∧

शहर

इस बूढे शहर की
जजर शहरपनाह

नक्काशीदार गवाक्षों वाले
संगमरमरी महल
और बदबूदार झील को देख कर
सोच में मत पड़ो।
शहर इनमें कहीं नहीं है।

चौराहे पर बारहा मास
खड़ा काले पत्थर का
वह मूछों वाला
घुड़सवार क्या कहता है
सुनो !
अभी तुमने शहर नहीं देखा
देखो और समझो
समझो और देखो
ज्यों ज्यों तुम देखते जाओगे
समझ जाओगे कि शहर क्या है ?

देखो
बुरा मत मानना।
पत्थरों सड़कों और मकानों का हुजूम
शहर नहीं होता
शहर होता है आदमी की आंख में
उसकी बोली में
हंसी में ठिठोली में।

तुम्हें नक्शा पढ़ना
खूब आता है
पर आंख तुम नहीं पढ़ना चाहते
हंसी ठिठोली तुम्हारे लिए
वक्त की बरबादी है
बोली को तुम समझते हो
बकवास।
तुम किताब पढ़ोगे

और समझने लगोगे कि
तुमने शहर को समझ लिया है।

किताब करिश्मा तो
हो सकती है
तुम्हारे लिए
वह कोई करिश्मा कर भी सकती है
पर भाई!
किताब शहर नहीं हो सकती
यह बात नक्की है
जिंदगी अक्षरों की इबारत
में नहीं अंट सकती
यह बात सौ टका पक्की है।

△

कुंदनसिंह सजल

गजल

जिंदगी तनहा सफर है शहर में आकर लगा।
हर मुखौटा जानवर है शहर में आकर लगा॥

आसमानों की खबर रखकर यहां पर आदमी।
आदमी से बेखबर है शहर में आकर लगा॥

मौत के डर से मुकाबिल पीढ़ियां से हैं सभी।
जिंदगी का सिर्फ डर है शहर में आकर लगा॥

इस मकां से उस मकां तक हर जगह, हर मोड़ पर
दूर घर में घर से घर है शहर में आकर लगा॥

दूर रखकर दिल यहा पर सिफ हाथा का मिलन
औपचारिकता अमर है, शहर म आकर लगा ।।

मुस्कराते अधर, हसती आख के काजल तने,
प्यार केवल रस्म भर है, शहर मे आकर लगा ।।

हर कदम भटकाव हर मजिल ठगा है दोस्ता
हर नजर पर हर नजर है शहर मे आकर लगा ।।

△

गजल

प्यास पनघट से मिली है,
प्यार की दरियादिली है ।।

दाद मौसम को दीजिय
धूप सावन म खिली है ।।

जब जमी न तौर बदले,
आसमा की दुम हिली ह ।।

जब कभी आकाश बदला
पीठ पवत की छिली है ।।

चीड वन से लौट जाओ,
आज फिर आधी चली है ।।

किस जगह इतिहास ठहरा,
हर जबा चुप है सिली है ।।

△

श्यामसुन्दर भारती

गजल

कोई लम्बी डगर है और हम हैं ।
एक अंधा सफर है और हम हैं ॥

होसला की तो बात मत पूछो
आसमा बेखबर है और हम हैं ॥

देखिये किस की जीत होती है
अब हथेली प सर है और हम हैं ॥

कोई उम्मीद पुरअसर ही नही
आसमा बेखबर है और हम हैं ॥

कत्ल का चाह खुद की न का हो
खून से हाथ तर और हम हैं ॥

कई तूफा गुजर गये सर से
एक कच्चा सा घर है और हम हैं ॥

△

ज्वालामुखी

एकाएक
नही तपती भट्टिया
बारे धीर
बहुत दिना तक
धुकता है चुपचाप
अन्दर ही अन्दर
एक आच

लगातार

बार-बार
उठती हैं चिंगारियां
और फिर
हवा के थपड खाकर
धु धुआती
भड़क उठती हैं
लपटे
लपलपाती हुई
बहुत बहुत दिनों तक
बहुत-बहुत लपटें
बहुत-बहुत तेज जलती हैं
उठती हैं लगातार
तब कहीं जाकर
तपती हैं भट्टियां
फटती है धरती
फूटता है—
ज्वालामुखी
फैलती है सर्वत्र
आग आग आग

कभी
एकाएक नहीं तपी
भट्टियां

कभी
एकाएक नहीं आता
तूफान
समझ हो
तो बहुत पहले सूंघ कर
अनुमान किया जा सकता है
मोड़

दिया जा सकता है
भीड़
एकाएक नही होती
एकाएक नही लगता
मजमा
बहुत दिनो तक
अन्दर ही अन्दर
बुलबुलाहट
खुसर पुसर
कानाफूसी होती है
तब कही जाकर हो पाती है
एकत्र
भीड
जिसे तुम बुलाते हो
तुम उठाते हो
तुम बिठाते हो
तुम सुलाते हो
तुम जगाते हो
नारे लगवाते हो
और
डडे मारकर वापस भगाते हो
तुम
भीड खाते हो
भीड पीते हो
भीड म जीते हो
भीड ओढते हो/भीड ही बिछाते हो
सुबह से शाम तक
मजमा लगाते हो
रात
तब कही जाकर थोडी सी
उचकती हुई नीद सो पाते हो
और

सुबह जब उठते हो
खुद को अकेला पाकर बहुत
घबरा जाते हो—

तुम
भीड़ापजीवी

तुम्हारे साथ
ये कैसी मजबूरी है
कि तुम्हारे जिन्दा रहने के लिए
भीड़ बहुत जरूरी है

माना
कि यह भीड़ का जमाना है
लेकिन
इस का भी क्या ठिकाना है
कि भीड़ कब बदल जाए
और तुम्हें रादती हुई—
तुम से आगे निकल जाए

भीड़
एक अंधी नागन
एक सैलाब/एक लाव/एक आग
मशालें थामे/जुलूस की शक्ल में
बढ़ रही है आगे
बढ़ा रही है कदम
राजपथ पर
निरंतर

भीड़
जो कुछ कहना चाहती है
अपने हक के बारे में
जिसे तुमने छीन लिया है
अपनी जरूरतों के बारे में

जिन्हें तुमने—
कभी पूरा नहीं होने दिया
अपनी भाषा के बारे में
जिन्हें तुमने कभी जाना/माना/सुना नहीं
और
और अपने सपनों के बारे में
जिन्हें तुमने बंद कर रक्खा है
अंधेरी बंद कोठरी में
कुछ दंगों के बारे में/जो तुमने करवाए हैं
कुछ नंगों के बारे में/जो तुमने फैलाए हैं
कुछ भूखों के बारे में/जो तुमने पैदा किये हैं
कुछ अभावों के बारे में
जो तुमने दिये हैं
भीड़
कुछ लेना चाहती है
अपना जीवन अधिकार
जिसे तुमने छीन लिया है
अपनी सांसें
जिन्हें घोट दिया है
अपना हवा
जो बन्द है तुम्हारी आलमारी में
अपना आकाश
जो रहन है तुम्हारे पास
और
और अपने पंख
जिन्हें तुमने काट लिया है बहुत
बेरहमी के साथ
भीड़
जो देना चाहती है
कुछ पोस्टर
जो तुमने छपवाए हैं

तूफान बन जाएगी
वह उमड कर आएगी
और अपने साथ
तुम्हे भी बहा ले जाएगी

उस दिन–
दुनिया की कोई ताकत
उसे नहीं रोक पाएगी
जिस दिन भीड
तूफान बन जाएगी
वह तुम्हे रौंदती हुई
तुमसे आगे–

बहुत आगे निकल जाएगी
कोई ताकत
उसे नही रोक पाएगी

और
यह भी याद रखो
कि भीड जब तूफान बन कर आएगी
तब उसके हाथो म
झडे होगे

और
कुछ देर बाद
वह झडे निकाल फेंकेगी
तब–
उसके हाथो मे/सिफ
डडे होगे।

△

उमेश ग्रपराधी

यह मकान

यह मकान
जायेगा किसी दिन गत्ते की तरह/
मैं ग्रपने बच्चा को कहता हू ।

छोडो कचा खेलना/ रत के घरादे बनाना/
हवा मे उडाना पतग /ग्रौर
उछलना कूदना बेवजह/तीर कमान पर तरकश चढाना

यह मकान
रुकेगा नही मैं जानता हू

कितना समय बिता दिया है इसने
धैय के साथ/ग्रगद के पैर की तरह खडे–खडे/
कितने जन्माये वच्चे पीढी दर पीढी/
ग्राई दुल्हनें/इसमे/डरी डोकरिया निकल गई ग्ररथी म
छाती छुपाये ।
हुई लडाइया/
समझौते/भोज/ग्रायाजन/
पर फिर–फिर कर जिदा रहा यह मकान/बार बार भर मर कर भी/

पर ग्रब यह मकान झुक गया है
टूट नीम की तरह/उखड गये हैं प्लास्तर
टपकते है टूट सपनों की तरह से इसके रग–रोगन
सफेद हो गई हैं
इसके ग्राखो की पुतलिया
हिलने लगी है परा की धमक से ही इसकी चटपटाती नस/
यह मकान ।

वच्चो !
ग्राग्रो जुगत करें/इससे ग्रलविदा की

चुनें दूसरा यही काई मकान/रहन की जगह/बाडा/
झोपडा/पटोर/या कुछ और/
समय अभी है और जिन्दा है अभी सामर्थ्य
आग लगने से पहले कुआ खोद लेना
समझदारी कहलायेगी हमारी।

△

जनक राज पारीक

राम कटोरी

गारा ले सीढी चढती है नवें महीने राम कटोरी
सस्ते दामो बेच रही है खून पसीने राम कटोरी

दरक गया मन जब छुटके का
रुका न अविरल रोना
एक घडी को बैठ गयी वह
ले आचल मे छौना
मौत पडी मुशी को और बर्राया बहुत बडा बाबू
पर बबुआ के मुह से टू बू कैसे छीने राम कटोरी

दिन तो कट जाता है तिल तिल
ककर पत्थर ढोकर
सध्या को साजन आता है
धुत्त नशे मे होकर

मन मे शूल बबूल बदन मे अग-अग मे कसक-कचुक
किसे सुनाये पिय के ये रसिया रसभीने राम कटोरी
चले रहट सी उम्र मगर
जग मे मरुथर सा नाता

रोज घास की रोटी कोई
बन बिलाव ले जाता
जन्म जनो खिचडी मे चावल, मूग मोठ तो बेहद कम है
कंकर रोट धार धुन ज्यादा क्या क्या बीने राम कटोरी

△

छत्तीसवी साल गिरह पर

बडे ग्रनमन एकान्त मे
मनाया है मैंने
यह उत्सव
छत्तीस मोमबत्तियो की जगह
छत्तीस साल जलाकर।

इस खुशी मे
कि छत्तीस वर्षों को
निल तिल काटा
पल पल सहा
फिर भी ढहा नही
ध्वस्त नही हुग्रा।
यही मेरी सबसे बडी उपलब्धि है
यही मेरा सबसे बडा कमाल है।

वहरहाल
मेरे सामने काटने के लिए
केक नही,
सतीसवा साल है
इसलिए
ग्रपने ग्रापको
तमाम शुभकामनाएँ सौंपता हुग्रा

आशीर्वाद देता हू
कि इस पावन पुनीत अवसर पर
सैंतीसवें वर्ष म प्रवेश कर
याने सदा की तरह
चढ जा बेटा सूली पर।

△

मनमोहन झा

कब तक ?

भूलें/प्रखर करती है/रास्ते की पहचान
ठोकरें/दुरस्त करती हैं/होश ओ हवास

कल/हाँ/कल
जब आम आदमी जागेगा/और/गहराएगी
इन्साफ की प्यास/तब
फन फैला कर उठ खड़ा होगा
आदमी होने का अहसास/तब/हाँ/तब
उतार देगा/ तुम्हारे सारे के सारे नकाब
पूछेगा/खुद परस्ती के सारे के सारे हिसाब

तुम्हारी जमीन/जायदाद
तुम्हारी हैसियत/तुम्हारी औकात
अक्सर
ऐसा होता आया है
जन चेतना/अन्तत मागती है
पुराने जवाब
न सही तुम–
—तुम्हारे बेटा को
देना होगा स्पष्टीकरण
ऐसे जानलेवा मौसम म/क्या हो सकता है

सम्पाती का उपाकरण।
हद से गुजर जाने पर
खुद-परस्ती/कार्बन डाईऑक्साइड सरीखी
जान लेवा गैस छोड़ती है
काटने पर नींद में सोया आदमी भी खटमल मार देता है

वे मुटल्ले/मुफ्त का माल डकारते
अपनी नियति के प्रति लापरवाह हो ही जाते हैं
ऐसे में/आदमी/कब तक सोये ? सोता रहे ??
कब तक सहे ? सहता रहे ??

△

सिलसिला

एक न एक दिन/सब का मरना/सो
सिकन्दर मर गया/और अपनी औलादें
दुनिया भर में छोड़ गया/उनमें से
किसी का भी चेहरा देख लो
वहां तुम्हें/सत्ता की/महत्ता की/दास्तानी गणित मिलेगी
सब जिद्दी अभिव्यक्तियां।

सत्ता यदि शाश्वत हो/तो नमस्कार करती है
वरना/यहीं कूटस्थ होकर/पराये कन्धों पर
गुनाहगार यात्राएँ।

भूमिगत टोटकों से बड़े-बड़े ओहदे खरीद
छद्मनाम सल्तनतें फैलाती है
सोचना कुछ/कहना कुछ/करना कुछ
सबसे पहले/अपने ही स्वजनों को पटाकर
गांव/मोहल्ले/शहर/प्रदेश/फिर देश/देशान्तर में
लोलुपता का अश्वमेधी घोड़ा घुमाती है
उनकी पाखण्ड प्रचारित महाशयता

उनको शीर्षस्थ कर देती है/ताज्जुब है
दुर्घटनाएं भी/ उनकी अभिनयपटु इमेज उभारती हैं

आम आदमी की नियति वही है/ जो
सिकन्दर के जमाने मे थी/पर अब पुरू के साथ भी
कोई राजा/राजा जैसा व्यवहार नही करता

उसकी चेतावनी के बावजूद/वही सिलसिला जारी है
खाली हाथ वापसी यात्राएँ/खण्डहर सल्तनतें
इतिहास के रक्त रंजित बदबूदार पृष्ठो मे खो जाती हैं
बावजूद चेतावन के/वही सिलसिला
बदलती हुई शक्लो मे अब भी जारी है ।

△

भागीरथ भार्गव

हर साजिश के खिलाफ

शैताना के पंजे बहुत जालिम हैं दोस्त
वे आते है दबे पाँव
वही आदिम मुस्कान लिए
और बिना किसी अपराध के
आनन फानन मे नोच डालते है
किसी हरी-भरी फुलवारी को ।

शैताना का कोई धर्म नही होता
ये किसी भी रंग, रूप जाति के हो सकते है
या फिर किसी के भी नही होते ।

ये होते हैं कभी गोडसे, कभी सतवंत
ये होते हैं कभी रंगा, कभी बिल्ला

सिर्फ विध्वंस पर खड़े होते है ये
चीत्कार—एक लम्बी, घनी चीत्कार सुन
ये केवल अट्टहास होते है ।

इनके हाथ चचल होते है किसी को भी झपटने
और अपनी हथेलिया को रगने खून से
किसी को भी अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए
सदा-सदा के लिए मिटा डालने की
रचते हैं साजिश अपनी क्रूर हिंसा से ।
यही होता हैं इनका प्रिय जश्न ।

कौन हैं ये ?
जो सत्य, निष्ठा और सकल्प को
सरे आम सूलों पर चढाते हैं
कौन हैं ये सिरफिरे आततायी
जो पूरी कौम को दगा देते है,
पूरी परम्परा को निरकुशता से तोडते हैं ।
किनके वशज हैं ये
कौन लगते हैं कस और चगेज खाँ इनके
और नादिरशाह और जयचन्द से इनका क्या है रिश्ता ?

क्या ये यू ही पोछते रहेगे माग का सिन्दूर
खाली करते रहेगे एक के बाद एक मा की गोद
सवाल आपके सामने है
सवाल पूरी जमात के सामने है ।

कि हो कोई निराकरण
ढूढा जाये कोई हल ।
नही है कोई अन्य विकल्प
सामूहिक चेतना को लाना ही होगा
हर साजिश के खिलाफ ।

△

उत्सर्ग

रूप रस, गंध और आकार
एक के बाद एक आकर
मेरे चारों ओर लहराने लगे थे
मैं बौरा गया था/उन क्षणों में।

रूप ने एक दैविक लोक दिया
रस ने एक सरगम छेड़ी राग रागिनियों से युक्त
गंध ने अनेक लोकों की यात्रा की
आकार ने गढ़ दीं अनेक उपमाएं।

दूर-दूर तक जहां जहां जाती थी दृष्टि
विस्तृत नीलाकाश में, उपयुक्त थी उड़ान
दूर-दूर घाटियों में था
गुदगुदे कार्पेट सा हरापन।

पहाड़ियों से झरने झरते थे
अपनी उद्दाम गति से
फिर दौड़ लगाते मिल जाते थे
      —उसी झील में।

वृक्षों पर थी गलबांह लेती डालियां
डालियां भरी थीं कुनमुनाते पत्तों से
डालों पर थी मधुरम चहचहाट
मन्द मन्द बहती बयार में
मोह भरी थी फरफराहट।
सभी कुछ वैसा ही था अनुपम

सच उन क्षणों में डूबकर
मन उत्कंठित था उत्सर्ग को।

△

नमोनाथ अवस्थी

समय कम है

कुछ दिनो तक इस शहर से
जूझने की सौगन्ध खायी है
तुम सहारा दे सको तो ।

धूप है तीखी उमर आधी, लदा है बोझ
कन्धों पर
अकेले है निपट सहारा है
कमदो पर
कमदा के सहारे से समुद्रों में
डूबने की सौगन्ध खायी है
तुम किनारा दे सको तो ।

समय कम है, अधिक है दूरिया
फिर काच फैले हैं
तकाजे लौट आने के बहुत ज्यादा
कसैले हैं

जमाने का जहर पीकर
लडखडाने की सौगन्ध खायी है
तुम इशारा दे सको तो ।

△

सघर्ष के लिए

जब जब भी समय के नीले समुद्र के
नीचे खडे होकर
किसी को देखा है--

मुझे गुलाब के फूल की याद आती है
चमेली के फूल की याद आती है
और–
पौधा का रस चूसती अमरबेल की याद आती है।

तभी साझ एक बसरी की तरह से गूजती है
मेरे भीतर–
और सारा वातावरण झनझना जाता है
किसी लचकदार पुल की तरह से।

और तभी अकस्मात मुझे लगता है
कि मैं
हवा हो गया हू/धूप हो गया हू/पानी हो गया हू/
एक नया ससार बसाने के लिए।
एक नयी सजना के लिए।।
और–
एक बहादुर सूय की तरह से
अधेरे से जूझने के लिए।।।

△

कैलाश मनहर

गजल

झूठ ने सच का लबादा, ओढ कर अभिमान म।
क्रांति स्वर को कत्ल कर, दफना दिया शमसान मे।।

मुझसे पूछा है, कई लोगो न, ये क्योकर हुआ।
हम सभी बैठे रहे बुजदिल बने अनजान म।।

जिन्दगी म हो अगर, बुनियाद ही, ईमान की।
तो बसा सकते हैं, गुलशन, हर कही वीरान म।।

लोग जो इस देश के खातिर लड़, और मर गये।
उनके ही नामों को बेचा आपने दूकान मे ॥

केतली म है उबलता जल, मेरे दिल मे लहू।
लो गजल के लफ्ज, लडने आ गये मैदान मे ॥

△

गीत

मैंने सपना रचा रात भर।
जग हित जागा, पचा रात भर।

वहते झरने, धानी फसलें
अधरा पर सतोषी रेखा।
गेहू की बाली, सरसो के फूलों मे
जीवन का लेखा ॥

स्वप्न देखते,
भय, तनाव, और मृत्यु-बाघ से हाथ छुडा कर-
मुक्त हुआ मैं बचा रात भर।
मैंने सपना रचा रात भर ॥

हर पेड की डाली पर जब
चहकी प्रात एक गोरैया।
खू टे बधी रभाई अनचक,
बछिया की ममता मे गैया।
मेरे मस्तिष्की आगन म,
कोपल से खिलते बच्चो का-
मीठा कलरव मचा रात भर।
मैंने सपना रचा रात भर ॥

△

मीठेश निर्मोही

वसत के ये फूल

वसत के य फूल
गध नही,
देते हैं भुरभुरा दद
श्रौर न जाने क्यो
भीतर ही भीतर उगे फूलो को
नफरत की नदी मे बहा देते हैं

इस दद म नहाते लोग
श्रासुश्रो की बारिश नही करते
छटपटाकर पछाड खाकर मरते हैं
जगलो के भीतर छिपी
श्रातकित करती कविता जब देती है दस्तक

पर
सगीतहीन हुए जगल को कौन समझाये
सहवास स उगे इन फूलो से
बारूद नही तो फिर क्या पिघलेगा ?

उदास ठडा नीम
श्रपन नगे होने का यह दद
लपटो से घिरे—
पहाडो की परछाइया मे बिखेरता है
श्रौर
भयावह पहाडो की परछाइया
झरनो को तलाशने निकलती हैं
श्रौर दूर दूर तक
फुसफुसाहटो के बिखरने के बाद

लाल पीले धु धलका म बिखरा जंगल
दात किटकिटाता नजर आता है
हवा के रागटा को रौंदता हुआ
चीत्कार को देता हुआ आकार
यह स्पश दे जाता है—
वक्त की पीठ पर लदे
वसत के ये फूल
गध नहीं,
देते हैं मुरमुरा दद ।

△

ज्ञान भारिल्ल

परम पुरुष

क्यों होता है वह
जो नही होना चाहिए ?
सूरज क्यो डूब जाता है ?
आग क्या बुझ जाती है ?
तलवार पर जग क्या लग जाती है ?

तलवार पर जग लगनी चाहिए
ताकि कलम से लिखे जा सकें—
प्यार के गीत
और चित्रित किए जा सकें—
गुलाब के फूल

आग को बुझना चाहिए
ताकि आदमी के मन का चदनवन
समूचा जलकर
राख का ढेर न बन जाय ।

सूरज को भी डूबना चाहिए
ताकि ठंडी हवा के झोंके
कुछ देर खेल सकें—
चांदनी के साथ।

हां होता तो रहना चाहिए
जो नहीं होना चाहिए।
जैसे—
सांप को डसना ही चाहिए
ताकि अमृत मंथन का पुरुषार्थ करना पड़े आदमी को भी।
फिर सूर्य अग्नि और तलवार की चमक लेकर खड़ा हो सके।
वह—
परम पुरुष!

△

डोलें दिशाएं

जाला
नहीं होगा तो मकड़ी जिएगी कैसे?
तुम क्या हो मक्खी या मच्छर?
जिसका खून चूसती है वह
फैलाकर अपना जाल
वह मकड़ी है—
फैलाएगी जाल
चूसेगी खून
तुम्हारा
जब तक रहोगे मक्खी या मच्छर।
आंधी या तूफान क्या नहीं हो तुम?
या भूडोल?
न रहे खंडहर न मकड़ी, न जाला।
केवल तुम रहो
और दिशाएं डोलती रहें।

△

अब्दुल मलिक खान

जगल का नियम

कोई चेहरा नही होता अजगर का
और न कोई घर ही होता है उनका,
उसकी हालत पर तरस खाकर जो उसे—
ठहराता है अपने घर
उसी को दबाच कर अपने जबडा मे
वह घर का मालिक बन बैठता है
यही जगल का नियम है।

भेडिया अपने लिए भोजन नही कमाता
वह तैयार भोजन पर
अपने पैने दात गडा देता है
और चट कर जाता है
निहत्थे नम भूखे मेमने का,
फिर मुखौटा बदल कर
उसकी मा नूरी या चमेली को
ढाढस बधाने पहुच जाता है
यही जगल का नियम है।

प्यास की सलीब पर लटक कर
मीठे पानी के झरने की कल्पना करने से—
कुछ नही होगा
तुम्हारे लिए वहा पानी नही
धूल भरे अधड हैं
आग उगलते धूप के टुकडो को
मत समझो फूली हुई गम चपाती
उसम तुम्हारे लिए पसीना है थकान है लेकिन—
तप्ति नही

करना ही चाहते हो मगर अपन भूखे
बच्चा के लिए—
दाने पानी की व्यवस्था
ता लाओ यहीं से
भेडिये की आखें
जरख के दात
और चीते के पजे
यही जगत का नियम है ।

△

गजल

नाग जहरीले कई पाले हुए हैं लोग
चादनी के देश म काले हुए हैं लोग ।

दद के ही नाम से घबरा उठेंगे जो,
और लोगा के लिए छाले हुए हैं लाग ।

भूख से तडपा किये फुटपाथ राता को
मौत के भी द्वार से टाले हुए हैं लोग ।

रोज लाती धूप तो गठरी सवाना की,
बन्द मुह चिपकी जुबा, ताले हुए हैं लोग ।

कौन ललकारे उमडते चक्रवातो को
हथियार पहले से यहा डाले हुए है लोग ।

हर घडी बेजाड रहने की तमन्ना मे
क्या पता कितनी जगह झाले हुए हैं लोग ।

△

नेमीचन्द दत्तात्रेय

मामूली नही यह

यह समय मामूली नही/
हा/
मामूली नही यह समय/जब
आदमी खबरो की कतरनो मे डूबा
ढूढ रहा है अपना धैय/साहस और शाति ।

राजनीति निगल रही है/सपने/नीद और रोजमर्रा की खुशिया ।
धम के चौराहे पर
छोड गये हैं कुछ मसीहा
आत्मघाती लडाइया/फिरकापरस्ती और
आत्म प्रवचना मे डूबे मानचित्र ।

सस्कृति की नदी को
निगलते जा रहे हैं/कछुए/कौए/और गिद्ध
एसे मे
कौन कह सकता है कि
यह समय
मौज मस्ती मे किलाल करने का है/
रति प्रसग मनाने की सनक मे
पतग उडाने का है/या
बाजारू वेश्या की तरह कोठे पर खडे होकर
मनोरजन मनाने का है ।

नही । नही ।
हा नही । यह समय
मामूली नही ।
मेरे दोस्त !

△

रमेश मयंक

जीवन-ज्यामिति

मैं
जीवन ज्यामिति म
मात्र एक बिन्दु हू
परिस्थितिया के परकार
परेशानिया की पेंसिल
सुविधाग्रो के स्केल से
मेरे चारा ग्रोर
वहशीपन की सीमा रेखा खीची गई है
ग्रब मैं सोचता हू
कितनी है-तृष्णाग्रा की त्रिज्या
विवशताग्रा की व्यास
पातालतोड पीडाग्रा की
परिधि का लम्बा इतिहास

मैं
रिक्तता से रेखाएं
कर्त्तव्या से कोण
चतुराइयो से चतुर्भुज
ग्रतृप्त ग्राकाक्षाग्रा से ग्रायत
वास्तविकताग्रा से वर्ग
लक्ष्यो से लेखा चित्र
बनाने म उलझ जाता हू
राय का रबर
बार बार प्रयोग मे लाता हू
समस्याग्रा का समाधान करने
शकाग्रो के सूत्र लगाता हू
फिर भी
गुण दोष की गणना करने मे
गलती कर जाता हू

रचयिता की रचना के
रहस्य को नही समझ पाता हू
सागर की तरह फैले ससार मे
मात्र बिन्दु ही रह जाता हू

△

माधव नागदा

सवेदनाओ का शहर

कल तक यहा
एक खूबसूरत शहर था
और
पेड यहाँ के बाशिन्दे
विशाल
कद्दावर
जटाजूटधारी
कठोर छाल
हहराती आवाज
मगर
भीतर से नमदिल
इतने सवेदनशील
कि
माचिस की लौ से
काँप-काँप जाए
उगली की छुअन से
सिहर उठे ।

पेड

दखते देखते
उग आया
मकाना का घना जगल

△

रामेश्वरदयाल श्रीमाली

बुखार मे कविता

कैस हमू कहा पर रोऊँ इस ोहरे व्यापार मे।
एक मरीखा फल मिलता है हम जीत या हार म।

सब कुछ है पर वक्त जरूरत पर कुछ हाथ नही लगता
कितनी अच्छी अरे व्यवस्था है साहब ! दरबार म।

मिलने को सब कुछ मिलता है चार रास्ते मे लेकिन
कोई चीज नही मिलती है हम खुले बाजार मे।

वैसे ता जुबान पर ताले कोई जोर नही सकता
हम सब भी कविता लिखते है वेहद तज बुखार मे।

सबके भीतर समा रहा है एक सरीखा कालापन
जुटे जा रहे हम बाहर के रगा के ससार म।

चुनो दोस्ता, चुन लो जल्दी इसका या उस पार का
बीत जाएगी बाढ अन्यथा खडे खडे मझधार मे।

△

जितेन्द्र शंकर बजाड

गजल

वो गली बोलो किधर है दोस्तो।
आदमी का जिसमे घर है दोस्तो॥

घूमते है सब मशीना की तरह।
चीखता सा क्यो शहर है दोस्ता॥

रोशनी की इस अनोखी दौड म।
भुलसा हुआ हर एक घर है दोस्तो॥

इस तरह स जा रह हैं सब कहा।
कैसा यह लम्बा सफर है दास्तो॥

तुम मुझे लाए यहा पर किस लिए।
यह तो जिन्दा मुर्दाघर है दास्तो॥

△

सावित्री परमार

सदियो का प्रश्न

मदिया से
प्रश्न उठता आया है
कि धुध का कोहरा कभी कभी
इतना क्यो घेर लेता है
मानव की सपूण अस्मिता को?

धुध और कोहरा
क्या है इसका समीकरण?

कभी श्वेतपाखी सा
चहचहाता दिन
कभी ग्लेशियर-सा जमा
मौन—एकाकीपन
कितनी विसंगति है
जीवन के इस आरोह अवरोह की ?

मन मे फैली तिमिर की स्लेट पर
पारे-सी रेखा खीचकर
किसी सुख का एकदम
बिछुड जाना
कितना कठिन अध्ययन है समय का ?
मिलेगी कही इस व्याकरण की व्याख्या ?

हर दिन कितना
छानना पडता है खुद को
दिनो के अको का जोड
कहा जुड पाता है जिन्दगी के
गणित से ?

फिर भी हर दिन
हथेली की वज्र शिला पर
एक विस्मयादिबोधक चिन्ह
खीच जाता है और
जीने की हर मंशा
मूर्छित बनी रह जाती है
सोच का हर परिच्छेद
हाशियो मे पडा रह जाता है
सदियो से यह प्रश्न अनुत्तरित रहता आया है

△

अरविंद तिवारी

भ्रम

जिन ढेरा वा रास समभकर
पूरे तन पर मल डाला था
व सव ग्र गार निकल हैं।

जिनको प्रेम पाश म ाधा
ग्रपन घर म जिन्ह वसाया
व सव वजार निकले ह।

जिन्ह चादनी समभ समभकर
उपमाग्रा म वाध दिया था
व सव ग्र धियार निकले ह।

जिनकी खुशिया स लगता था
पूरा गुलशन महक रहा है
व सव दुखियारे निकले है।

जिनका महल समभकर हमने
ग्रपना डेरा डाल दिया था
व सव गलियारे निकले है।

हमने जिन्हें किनारा समभा
ग्रौर वाध दी ग्रपनी कश्ती
वे सव मभधारे निकले ह।

△

प्रेमप्रकाश व्यास

सुनो दोस्त

सुना दास्त

अर्द्ध रात्रि पर उचटी नींद का
उन कहानियों को,
या कि पिछली रात के ख्वाब
जिन्हें
आंसू नहीं
खून नहीं
सांसों की धौंकनी से पकाया है
पक्की मिट्टी के बर्तन की तरह
टकरा कर बजेंगे ही
इन पर
जलने के निशान ताउम्र कायम रहेंगे
और जब जब भी इन्हें
जज्बातों के पानी से भरा जाएगा
बेहद ठंडापन उभरेगा
दोस्त !
उसमें से निकलेगी एक
नज्म
जो एहसास तो क्या
खून तक जमा देगी
रगों में बहते खून को ठहरा देगी
और तब दोस्त
एक नया खयाल पैदा होगा ।

△

जितेन्द्र

पहचानता हूं

तुम छिपाओ लाख दिल के राज मुझ से
मैं तुम्हारी हर नजर पहचानता हूं ।

आजमाऊ क्या वफा में तुम्हारी,
मैं तुम्हे कई जनम से जानता हूं ।

गाता हूं तेरा तरन्नुम साथ लेकर,
तेरी यादों के सहारे जागता हूं ।

साथ ना छूटे कभी मेरा तुम्हारा
बस दुआ ये ही खुदा से मांगता हूं ।

जाना दिन ईमां सभी कुछ है तुम्हारा
क्या बताऊं मैं तुम्हें क्या मानता है ?

△

हेमराज शर्मा 'शिशु'

बद हवा

पत्थर से माथ तोडते पाये गये हैं लोग,
फूलों से गहरे जख्म खाये हुए हैं लोग ।

इस राजे हकीकत का सभी से है वास्ता,
जमाने की बद हवा से सताये हुए हैं लोग ॥

शीशे के बने जिस्म में पत्थर का दिल लिये,
नकाब अपने मुंह पर लगाये हुए हैं लोग ।

बंद करके सारे ही रोशनी के रास्ते
बहती हवा को जहरीला बना रहे हैं लोग ॥

रहते जमीन पर है, जमीन से ही दुश्मनी,
अहसान फरामोश आज बन गये हैं लोग ।

मतलब का जाम थाम आराम के लिये,
अब आदमी का बौना बना रहे हैं लोग ॥

△

उगनती हा
ग्रनाज मे भण्डार
करती हा पापित
जन जन का

मुझे
तुमस
ग्रसीम प्यार है।

△

निशान्त

प्रतिबद्ध

जी हा । मैं
वक्ती विषया पर
लिखता हू
ग्रापकी यह दलील, कि
समसामयिक विषया पर लिखा
शीघ्र ही मर जाएगा
मुझे नही पचती

ग्राप ही करत है
कालजयी हान का फिकर
मुझे ता चिन्ता है कि
जिन जिन विषया पर म
लिखता हू
वे जल्दी से जल्दी सुलझ
भले ही मेरी रचना को कोई
दो दिन बाद ही न बूझे

जगदीश शर्मा उज्ज्वल

समय का बुनकर

क्षण के धागा से
समय का बुनकर
बुनता है भविष्य

एक राही दौड़ता है
क्षण को छोड़ समय के पीछे
भविष्य कभी पकड़ नही पाता

एक राही क्षण क्षण को
बाँध लेता है
दोनो हाथो म थाम लेता है
भविष्य अपने आप चला आता है
श्रम की अचना मे
इसलिए सफल वही है
जिसने क्षण को व्यथ नही गवाया है
दोना हाथो से
श्रम कमाया है।

△

पुष्पलता कश्यप

धुधले इन्द्रधनुष

पुरान अधेरे घर मे जसी दुग ध पाई जाती है
वैसी ही बदबू यहा भी बस जाएगी
भारी भरकम पड का तना मुसमुसाकर

कोई कोना वह ढूढ नही पाती
और गुजरे क्षण का दु:ख स्वय एक व्यक्तित्व बन ज
उसके बाद पूरी तरह एक नूतन प्रारभ होता है
अनुशासन को तोडकर जीने वाले पौध
मृत्यु के बाद भी झूमते हैं

△

केरोलीन जोसफ

खाली आदमी

कोई बजाता है तभी बजता है ढोल
ढोल कोई आदमी नहीं
कि अपने आप बजे
खाली आदमी
खुद ब खुद बजता है
सजता है/धजता है

मचों पर
सडकों पर
चमचों के चेहरों पर
विज्ञापित होता है

अपना आप
चालाकी का चलता फिरता
इस्तहार ।
भीतर मक्कार
बाहर बोधिसत्व निर्विकार
भीतर धिक्कार
बाहर जय जयकार

कोई कोना वह ढूढ नहीं पाती
और गुजर क्षण का दुःख स्वय पर व्यतिरेक का जाता
उसके बाद पूरी तरह नया सूना प्रारभ होता है
अनुगामन को तोड़कर जीत जाने लोग
मृत्यु के बाद भी झूमते हैं

△

केरोलीन जोसफ

खाली आदमी

कोई बजाता है तभी बजता है ढोल
ढोल कोई आदमी नहीं
कि अपने आप बजे
खाली आदमी
खुद व खुद बजता है
सजता है/धजता है

मचो पर
सड़को पर
चमचो के चेहरो पर
विज्ञापित होता है

अपना आप
चालाकी का चलता फिरता
इश्तहार ।
भीतर मक्कार
बाहर बोधिसत्व निर्विकार
भीतर धिक्कार
बाहर जय जयकार

कोई काना वह ढूढ़ नही पाती
और गुजरे क्षण का दुःख स्वय एक ध्यर्थ
उसके बाद पूरी तरह एक नूतन आरभ
अनुशासन को तोड़कर जीने वाले पौध
मृत्यु के बाद भी झूमते है

△

केरोलीन जोसफ

खाली आदमी

कोई बजाता है तभी बजता है ढोल
ढोल कोई आदमी नही
कि अपने आप बजे
खाली आदमी
खुद व खुद बजता है
सजता है/धजता है

मचा पर
सड़को पर
चमचा के चेहरो पर
विज्ञापित होता है

अपना आप
चालाकी का चलता फिरता
इश्तहार ।
भीतर मक्कार
बाहर बोधिसत्व निर्विकार
भीतर धिक्कार
बाहर जय जयकार

आना जाना बहुत कठिन है, बढा किराया खूब ।
हर दिन की तगी तुरसी से, मरने मन मे ऊब ।।

कैसे रगा मगल होंगे कैसे बरसे रग ?
कैसे शहनाई बाजेगी कैसे उठे उमग ?
महगाई मे जकड गए हैं मेहनतकश के अग—
कैसे चौपालें गमकेंगी, कैसे हो सत्सग ?

कैसे उत्सव मनें बधेगी कैसे बदनवार ?
कैसे कला करेगी अपना नित नूतन शृगार ?
नोन तेल लकडी के चक्कर मे फसकर दिनरात—
कैसे नव साहित्य सृजन की देंगे नव सौगात ?

महगाई की मार पडेगी रोज रोज हर रोज—
कैसे प्रतिभाए चमकेंगी कैसे होगी खोज ?
कैसे सस्कृति के पखो को लग पाएगे पख ?
कैसे गूजेंगी अजान कैसे बाजेंगे शख ?

महगाई का बोझ बढा है बढा हुआ सत्रास ।
अरमानो के नवल चन्द्र को लगा आज खग्रास ।।
जीवन मे थिरकन गायब है चेहरे हुए उदास ।
अधरा मे अब बहुत दूर है हास और परिहास ।।

महल कोठियां देख न पाती महगाई की मार ।
तीखे तेवर दिखा रही है ससद औ सरकार ।।
लेकिन कब तक और चलेगी जन जन म है रोष—
नया खून बेताब हुआ है ज्वालो मे जोश ।

मचल रही है सडक मचलते खेत और खलिहान—
निश्चित नई व्यवस्था होगी होगा नया विहान ।
सीधी उगली घी निकला तो समझो सबकी खैर—
वरना जन आक्रोश बढा तो और बढेगा बैर ।।

△

आना जाना बहुत कठिन है, बढ़ा किराया खूब ।
हर दिन की तगी तुरसी मे, सबके मन मे ऊब ।।

कैसे रगत मगन होंगे, कैसे बरसे रग ?
कैसे शहनाई बाजेगी कैसे उठे उमग ?
महगाई मे जकड गए हैं, मेहनतकश के अग—
कैसे चौपालें गमकेंगी, कैसे हो सत्सग ?

कैसे उत्सव मनें बधेगी कैसे बन्दनवार ?
कैसे कला करेगी अपना नित नूतन शृगार ?
नान तेल लकडी के चक्कर मे फसकर दिनरात—
कैसे नव साहित्य सृजन की देंगे नव सौगात ?

महगाई की मार पडेगी रोज रोज हर रोज—
कैसे प्रतिभाए चमकेंगी कैसे होगी खोज ?
कैसे सस्कृति के पखा को लग पाएगे पख ?
कैसे गजेगी अजान कैसे बाजेंगे शख ?

महगाई का बोझ बढ़ा है बढ़ा हुआ सत्रास ।
अरमानो के नवल चन्द्र को लगा आज खग्रास ।।
जीवन से थिरकन गायब है चेहरे हुए उदास ।
अधरो मे अब बहुत दूर है हास और परिहास ।।

महल कोठिया देख न पाती महगाई की मार ।
तीखे तेवर दिखा रही है ससद औ सरकार ।।
लेकिन कब तक और चलेगी, जन-जन मे है रोष—
नया खून बेताब हुआ है कगालो मे जोश ।

मचल रही है सडक, मचलते खेत और खलिहान—
निश्चित नई व्यवस्था होगी होगा नया विहान ।
सीधी उगली घी निकला तो समझो सबकी खैर—
वरना जन आक्रोश बढ़ा तो और बढ़ेगा बैर ।।

△

गृहिणी से बतियाए
या कि रैक में पड़ी किताबों को
तरतीब से सजाए
मन के किसी कोन में सोई अंतर्व्यथा को
तबीयत से नई सिगरेट सुलगा कर
कलम के मानिंद
कस कर अंगुलियों में दबाए
और
भावों विचारों के कदम तक
आने को
राइटिंग टेबल की सीमाओं पर
आंखें गड़ाये इंतजार करें

फिर भी कविता न जागे
तो सिवा इसके
क्या हो सकता है
कि बत्ती बन्द करें
और दुबक कर बिस्तर में
सो जाएं !

△

हरीश व्यास

मूल्य-वृद्धि

पत्नी ने
नेता पति से कहा—
"नाथ
क्या किया

श्यामसनोहर व्यास

युगीन क्षणिकाएँ

1 समानता

इन्द्रधनुष और नेता
इनमे एक है समानता
आधी और तूफान के
बाद मे नजर आते हैं।

2 अनुकरण

वे शहीदो के
पदचिन्हो पर बढ गये
शहीद तख्ते पर चढे थे—
वे तख्त पर
चढ गये।

3 निष्कर्ष

दुख
इसलिए आम है क्योकि
सुख का कापीराइट
कुछ लोगो के नाम है।

4 महगाई

21 वी सदी म जाने को
इच्छुक महगाई
व्याकुल होकर—
आसमान छू रही है।

5 जोडी

विदेशी दम्पति को दिखा देहाती ने
अपने साथी से कहा—
'देख रे क्या जोडी
जसे छैनी और हथौडी है।'

△

ब्रजेश 'चंचल'

गजल

हमारा भी तो गगन है दोस्तो,
हमारा भी तो वतन है दोस्तो !

अकेले ही गध अब तो मत पिया,
हमारा भी तो चमन है दोस्तो !

शहीदा के शिवाला के द्वार पर
हमारा भी तो नमन है दोस्तो !

हुआ जब यह देश यू आजाद तो,
हमारा भी तो जतन है दोस्तो !

इन कला के कारखाना मे कही,
हमारा भी तो कफन है दोस्तो !

△

बुलाकीदास बावरा

गजल

उग दशक स दस दशक, तक दौर जजाली रहा,
बीड़ियो चलता रहा, कंफ मगर खाली रहा,

पीर की गहराइयो को व कभी जान नही,
पीठ पर जिनके सदा 'मैं' ही सवाली रहा,

एक काली छाह ने इतना अधेरा कर दिया,
टूटे दरखत सा उजाम चुप्प वनमाली रहा

गान क थाला म घुले, वहनियानी हरकतें
गान गूगा हो गया, सोच नक्काली रहा,

भेट हा जब आदमी का, आदमी की ला। ही,
क्या कह अ जाम का जा कि टकसाली रहा,

जिन्दगी इक आह सी कचाटती है बावरा'
शब्दा ने होश खा दिए अथ नक्काली रहा,

△

वासुदेव चतुर्वेदी

तिलचट्टे

जगल !
दूर दूर तक फले
जगल ही जगल
जहा रेंग रहे ह
तिलचटट ही तिलचटट

स नाटा
उगल रहा अधियारा,
रौद रहा खुशहाली
भाग रहा
इस पार से उस पार तक

आकाक्षाओ का हवाए
पूर गई थी नस नस म
अब उन बढते
तिलचटटा का दख
सिसकी म बदल गई

आज का यह माहौल
आने वाले कन के लिए
अधकार म डूब रहा
हर उजला मन

न गेप न अवगेप
बस इन्सान भी
तिलचट्टा की तरह
रेंग रहा

धरती के अंधेरे कोने में
दम तोड़ती जिजीविषा
जीने और मरने के
अर्थ केन्द्रित जंगल में
सिर धुन रहा,
तिलचट्टा के प्रजनन पर

निस्सहाय निरुपाय से
चारों ओर रेंग रहे
तिलचट्टे ही तिलचट्टे
खड़े या पड़े
झुंड के झुंड
जीने का प्रश्न चिह्न
इन सब पर
क्रास पर लटके ईसा की तरह
कचोट रहा—
सब के सब ही इकट्ठे।

△

सांवर दइया

ये दरवाजे खोलो

बंद पड़े ये दरवाजे खोलो
हवा चल रही है
ताजा हो लो!

पाट दा
अपने बीच की
हर खाई आज

तोड कर
य मौन की चटटानें
गले मिला भाई आज
साम सास मे अमृत घालो
बद पडे ये दरवाजे खोला।

उठ रहे है
नित नये अधड
दिखता नही आकाश
उजली चादर
हुई क्या मैली
उठ गया विश्वास

प्रेम के गगाजल मे मन धा लो
बद पडे ये दरवाजे खोलो

△

चतुर कोठारी

नया नारा

अब
न पृथ्वी का
घूमने की आवश्यकता है
न
मासम का बदलन की
प्रजातन्त्र के

शरीर के लिये
दो हाथों की
आवश्यकता नहीं
अब तो
कम्प्यूटर करिश्मा दिखाएगा
और
एक ही हाथ में
हजारों अगुलिया उगाएगा।

आगे से
ताली भी
एक ही हाथ से
बजा करेगी
और
बांसुरी की तान भी
एक ही हाथ से
छिड़ा करेगी।

और कल
सूरज उगने पर
घोषणा के चुनाव की
एक ऐसी पौध
उग आएगी
जिसमें कांटे नहीं होंगे
और फूल की हर पत्ती ही
कांटे का काम करेगी।

आने वाले दशक में
उन बहु आयामी कम्पनियों को
बन्द कर देना होगा
जिनमें
गधा, घोड़ा, ऊंट और हाथियों के लिये
दावणे, लगाम, नकेल व अंकुश
बना करते हैं।
क्योंकि—

अब य सभी
ऊर्जा के एकमात्र
प्रतिभाशाली कम्प्यूटर स
सचालित हाग ।
अब गाडी
दा पहिया पर
नही चलेगी
अत
आग लगा दा
अनुभव क पहिया म
क्याकि
व
बहुत बहुत पुरान हो गये है ।
अब ता
लोकत त्र का रथ
एकमात्र
प्रतिभा के पहिय पर ही
चला करेगा ।
इसलिय
हमारा अगला नारा होगा
हमे अनुभव का दीपक नही
प्रतिभा की रोशनी चाहिए ।

△

त्रिलोक शर्मा

गीत

हम हाथ प हाथ घर बठ
कुछ काम नही मजबूरी है

आँखों में सुहाने सपने हैं
आशाएँ अभी अधूरी हैं

वायदों के सूने जंगल में
पीड़ा की आग सुलगती रही
युग बीत गया पथ भूल गये
मंजिल को निगाह तरसती रही
औरों की बात करें हम क्या
अपनी ही बात न पूरी है

मृगतृष्णा से समझौता का
आखिर कब तक स्वीकार हम
हो गये धनुष झुकते-झुकते
सब और कहाँ तक हारें हम
प्रत्यञ्चा पूरी खिंची हुई
अब छुटना तीर जरूरी है

अमृत के शीतल प्यालों में
विष ज्वार नहीं आने पाये
ओ भूख जमाने सम्हल कहीं
अंगार ना हम बन जाएं
सदियों से निरन्तर खोज रहे
अब तक गायब कस्तूरी है।

△

पी राज 'निराश'

?

कौन टहलता जाता है
चुपचाप
अंधेरे-अंधेर

मरे जगन स भी पहले
फूल पत्ती घास का,
दसा दिशाग्रा और
मर ग्रास पास का ।

किसने बिखरा दी है
यह खुश्बू
महकी महकी भीनी भीनी
जलते ग्रगरु ग्रौर
घिसे चन्दन-सी ।

कौन जला गया है
यो ज्योतिपुञ्ज
उधर
प्राची की वेदी पर ।

क्या गाने लग गय हैं
ये पक्षी
सामवेदी गीत
समवेत स्वरा म ।

यह क्या
भगवन् [!]
पूजन हो गया है

तो मैं क्या व्यथ ही
इतन दिन
पूजा का दम्भ
भरता रहा हू
ग्रौर
ग्रगत नहाये दव का
पाखर क पानी स
गन्दा करता रहा हू ।

△

मणि बावरा

सिर्फ आज ही

वर्ष भर की चुप्पी के बाद
सिर्फ आज ही
हवा में क्या उछाला जाता है
मेरा नाम !
सिर्फ आज ही

आपने तो पाली हैं
कल्पवृक्ष सी सम्भावनाएं
सिर्फ आज ही
रजकणों पर क्या लिखा जाता है
मेरा नाम !

जो देता है जिह्वा को शब्द
नयनों को भाषा
अधरों को गीत
और हाथों को रच सम्बल
जो स्वर अभावों की आग में
जा फेंकता है उजास
यह शिल्पी
जो रचता है
पीढ़ियों का इतिहास
सिर्फ आज ही
टीन कनस्तर की तरह क्या बजाया जाता है
मेरा नाम !
सिर्फ आज ही ।

△

गर्मी जब जोरा से पडती
दम घुट जाता सास उखडती
पत्ते डर से चुप हो जाते
हवा नही जाने क्या चलती
तभी अचानक गडगड करके
झम झम खूब बरसते बादल ।

तरस रहे थे जाने कब से
ताल तलैया पोखर प्यासे
पानी पानी चिल्लाते थे
चैन मिला है अब बरखा से
कब से बुला रहे थे तुमको
काहे देर लगाई बादल !

धरनी रूप बदल देती है
ओढ हरी चादर लेती है
मुर्दा प्राणो म जादू से
फव नया जीवन देती है
तुम्हे देख कर मार नाचते
बच्चे खुश हो जाते बादल ।

△

विद्या पालीवाल

पडाव

वही कुछ
खो गया किमी का
इमीलिए तो
उसका मन
उलझा–उलझा
उदास है ।

गर्मी जब जोरा से पडती
दम घुट जाता साम उखडती
पत्ते डर से चुप हो जाते
हवा नहीं जाने क्या चलती
तभी अचानक गड्गड करके
झम झम खूब बरसते बादल ।

तरस रहे थ जाने कब से
ताल तलैया पोखर प्यासे
पानी पानी चिल्लाते ये
चैन मिला है अब बरखा से
कब से बुला रहे थे तुमको
काहे देर लगाई बादल ।

धरती रूप बदल देती है
ओढ हरी चादर लेती है
मुर्दा प्राणो म जादू स
फिर नया जीवन देती है
तुम्हे देख कर मोर नाचते
बच्चे खुश हो जाते बादल ।

△

विद्या पालीवाल

पडाव

कही कुछ
खो गया किसी का
इसीलिए तो
उसका मन
उलझा-उलझा
उदास है ।

न ऋतु के
रंगीन स्पन्दन का
आकर्षण
न नियति के व्यामोह
मे भटकाव
एक शिथिल निराशा
जीवन परिभाषा
आज का फिर
कल पर ढोने की आशा
यही जीवन पडाव है ।

△

जयसिंह चौहान 'जोहरी'

एक चतुष्पदी

दुर्दिनो मे दी चुनौती तीक्ष्ण शूलो ने
निकट का वेहद किया रिश्ता बबूलो ने
वक्त की कितनी बुरी बहन लगी है बात
रहनुमा बन कर दिये अगार फूलो ने ।

△

कु सुशाल श्रीवास्तव

प्रेत

हर आम आदमी आज
जीवन की शाख से
उलटा लटका हुआ है प्रेत की तरह

वह उस पर पल पल जुभता है
और घूजता है
पर छोड नही पाता इसे
मैं उसे
इस योनि से मुक्ति दिलाने के यत्न म
हर बार इसे उतार
कधे पर डाल कर चलता हू
त्योही यह मुझे
अपनी बातो मे उलझा कर
मुझे ही छलता है
और पुन
उसी राह पर चल निकलता है
कैसा है यह प्रेत
जो अपनी कष्ट कारा से भी
मुक्ति नही चाहता
है न विचित्र
हर बार एक नई कहानी नया प्रसग
लाता हे अपने सग
कि जिसमे भूलकर
लीन हो जाता है मेरा अग प्रत्यग
और मैं आत्मविस्मृत हो उसी के सग
वह निकलता हू
होश ही नही रहता
वह तो तब ख्याल आता है
जब वह अपनी जीत पर ठहाके लगाता हुआ
मुझे भी अपने साथ दौडाता हुआ
पुन ले आता है उसी पेड पर
जहा उसका ठिकाना है
जो उसके मन ने माना है
चाहता है
मैं भी उस की तरह

शाख से लटक जाऊ
है न विचित्र !

△

सुरेन्द्र अचल

भुने मास की गध

आऽक.. थू ऽऽ!
अरे हवा के झोको मे
यह भुने मास की गध
अभी तक ?
आ क थू !
कुरन धधक रही मुल्क की
अब तक धूऽधू !
आऽक थू ऽ!

यह आदमी का मास
भून कर
किसने खाया ?
भोपाल पर यह कडवा धुआ
क्यो मडराया ?
पजाबी नीली धरती को
किसने पैने नाखूना से
नाच नोच कर
इतना सारा खून बहाया ?
गजब हो गया !
किस दुष्ट ने
मजहब के हाथा मे सगीन थमा दी !
गगा तो हो गई मैली

किन्तु रावी और सतलज
का दिल यो धडक रहा क्या ?
आतंकित क्या ?
भाई से भाई शंकित हो
आपस मे यो भडक रहा क्या ?
सावधान ! मानव के बेटो !
कितनी माताओ से उनके
लाल छिन रहे !
लोगेवाल कृपाल
मोलायस जसे
सत कविगण कितने
मृत्यु की घडिया की
चलती नब्ज गिन रहे।
घृणा की इस
वीभत्स हवस पर
थूक रही है पीढी थूऽथू !
आक थू !
अरे हवा के झोको म
यह भुन मास की ग ध
अभी तक ?
कुछ धधक रही मुल्क की
अब तक धू धू !
आऽक थू !

△

नरेन्द्र सांचीहर

वजनाए होती है

सनाए रोती हैं
आस्थाए सोती हैं

ग्रौर ना ही,
इ्हे लगातार,
रेशमी रूमाला से,
पौछ कर,
सुखाया जा सकता है।
लेकिन,
इस विसगतिपूण
दुनिया म
इ्हे वहा कर
कम से कम,
थोडी राहत ता,
पायी ही जा सकती है।
शायद,
इस उम्मीद के सहारे
कि,
किसी स्वाति नक्षत्र म
हमारे ग्रासू,
सीपी द्वारा पीय जाकर
मोती बन जायेगे।
ग्रौर हमारी यह
सशक्त, मुखरित,
मानसिक ग्रभिव्यक्ति
एक ग्रमूल्य एव ग्रायातित
ग्राकृति धारण कर
ग्रपना,
सही मूल्यावन,
करवा सकेगी
लेकिन,
फिर भी मन शकित है
कि कही,
उससे पूव ही,

योगेन्द्रनाथ भटनागर

प्रदूषित मानवता

आधुनिकता के बोझ से दबी,
इस दम तोडती दुनिया को वही
सभ्यता का
झूठा स्वाग भरता, अजदहा,
निगल ना जाए।
समय की बैसाखिया के सहारे,
यह कब तक
लगडा कर चलती रहेगी।
हर मोड पर
सामाजिक कुरीतिया के दानव,
इसको लीलने के लिए,
मुह बाये खडे है।
दहेज के नाम पर,
जिन्दा जला दी गयी,
किसी नवोढा के,
जलते हुए मास की दुर्गन्ध
इसकी श्वासा को कसैला बना रही है
आगजनी, लूटमार, बलात्कार,
साम्प्रदायिकता, राजनीति, रगभेद
और युद्धो के विषैले धुए से,
प्रदूषित होती हुई,
मानवता की इन प्रदूषित श्वासा को,
उस दिन का इन्तजार है
जब इन करुण कराहो से
उत्प्रेरित होकर,
कोई मसीहा आ कर
इन बहते हुए आँसुओ को पोछ कर,

आखें, प्यासी भूख
निकल कर आतडियां से बाहर
छूने लगती हैं
आकाश ।

△

नेनाराम टाक

यही सामयिकता है

खोखले गगन मे गरजेंगे
बिना तथ्य की कौंधेगी बिजलियां
और तलवारें लपलपायेंगी
पूरे आवेश, दबाव और शक्ति के साथ
लेकिन पदार्थहीन
जीवन और सवेदना के नाम पर
शून्य की तरह व्यथ फैलते जाना
मेरे चिन्तन की सामयिकता है ।

आक्रोश, जोश और क्रातिकारी तेवर
निहित स्वार्थों का महिमामय गुणगान
जोर शोर से बोलकर सौ बार सच' बोलने की कलाए
और अपने समथन मे घोडों की घुडदौड
प्रशसा के साथ सत्ता की स्वीकारोक्तियां
अवसर की महान उपयोगिता की खोज
मेरे सत्य की सामयिकता है ।

यथाथ के नाम पर यथाथ विरोध
तब्दीली के ऊपरी उछाले
साधुओं के उपदेश और सफेद बाने मे मीठा मुह
विकार शून्य मन का काला रग

हर नयी रचना का कौशल
मेरे वग का कौशल है
और यह स्वार्थी ध्रुव तारा पीढ़िया से लड़ता हुआ
दिशाहीन लोगा म है जिन्दा
मेरे इन्सानी सृजन मे
उस ध्रुव तारे की सामयिकता है।

△

श्याम अश्याम

भीतर ही भीतर

हलचल होने लग गई है
देश की भू पपटी के तले
भीतर ही भीतर।
पिघल रहा है लावा
कडवा धुआ,
फल रही है विषैली वाष्प
भीतर ही भीतर।

आतकवाद का लावा
साम्प्रदायिकता की दूषित गरम गैस
अनैतिकता की वाष्प
और भेद भाव की धुंध
आस व्याप्त है।

लगता है कोई साजिश हो रही है।
तैयार हो रहा है मेग्मा,
लथपथ दलदल
भीतर ही भीतर।

भय लगता है—
भूगम म किसी छिद्र को टटोलकर
ज्वालामुखी के रूप मे

मझधार बन जाय,
और थपेड़े खाती जिंदगी
कभी पतवार बन जाय।
परंतु
गिरते हुए बाजुओं को थाम सके—
मौसम की अंगड़ाइयां को जो नाप सके—
उन फौलादी इरादों की हर सुबह
मेरे अस्तित्व की
जलती हुई मशाल है।
और यही—सिर्फ यही
मेरी संभावना का
तोरण द्वार है।

△

त्रिलोक गोयल

कायाकल्प मुहावरों का

अंग्रेजी कहावत है
कि खाली मस्तिष्क भूतों का कारखाना होता है।
पता नहीं किन फालतू बड़े लोगों के कीड़े काटे
जो ऐसे ऐसे बिना सींग पूंछ के मुहावरे लोकोक्तियां
घड़ गये और मर गये।
बेचारे बच्चों और मास्टरों की नींद हराम कर गये!!
कहिये! खीर टेढ़ी सीधी कैसे होती है?
टेढ़ी खीर में सीधा अर्थ फिट करना—
है या नहीं बहुत मुश्किल काम?
किस डाक्टर ने बताया है मेंढकी के जुकाम?
जब नौ दो ग्यारह का अर्थ भाग जाना है

तो तीन पाच करन का अर्थ धीर चलता होना चाहिय
बताओ ! इनके ऊपर और नीचे के अर्थों म—
है कहीं कुछ तालमल ?
यहीं आकर तो हो गया है सारा का सारा गणित फेल ।
इन अक्ल के अधो ने मुहावरे बनाये ह या मजाक की है ?
(इन ईडियटा ने ईडीयम्स बनाये है या जोक्स की है)
क्या जी ! जब ऊट के मुह म जीरा कहावत हो सकती है
तो हाथी के मुह म राई क्या नही हो सकती ?
बिल्ली भगतिन और चूहा पसारी ।
ता थोडे दिना म खटमल कहलायेंगे सारे के सारे अधिकारी ।।
है कोई माई का लाल
जो इस वैज्ञानिक युग म भी निकाल सके बाल की खाल ?
इन मुहावरा की हजामते बनाओ ।
जमाने के माफिक नये कपडे पहिनाओ ।।
जैसे—आधी के आम के स्थान पर गाधी के आम होना चाहिये ।
एक अनार सौ बीमार नही/सत्तर करोड बीमार होना चाहिये ।।
अधा बाट सीरनी घर घरका को देय
बोलो य क्या लाकाक्ति हुई
अधा रेवडी बाट कसे
घर वाला का पहिचान कैसे
इसम अध के स्थान पर नेता कर दें तो कैसा रह ?
नेता बाटे सीरनी घर घरका का दय
हे प्रबुद्ध बुद्धुओ !
यदि इन मुहावरा की जिदगी सार्थक करनी है
तो मुर्दो का दफनाओ/नया का जमाओ ।
जाट रे जाट तेरे सर पर खाट
एसी व्यर्थ की बेतुकी कल्पनायें मत लाओ ।
पता नही ये ऊटपटाग मुहावरे आकाश से गिरे या पाताल से आ
इन अवैध लावारिस सताना को काई कहा तक निभाय
बात बेबात इन मुहावरा के मले झमेले ।।
जैसे साहित्य की सडक पर
सभ्यता सस्कृति के सडे हुये केले ।।

△
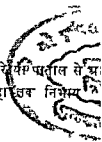
मीलों तक फैले ऊँचे रेत के टीलों पर
जिन पर न जीव है न जीवन
यदि कोई है तो—सड़े मांस की गंध
मरे हुए जानवरों की हड्डियों के ढेर
जिन पर गिद्धों और कव्वों का बसेरा।
दूसरी ओर फैली है
अकाल सहायतार्थ सेवाएं
राशन की दुकान पर
अर्धनग्न स्त्री पुरुषों की
कभी खत्म न होने वाली क्यू
जल वितरण की सरकारी व्यवस्था पर
महिलाओं और बच्चों का अनुशासनहीन घेराव,
बच्चे ! अपनी मां की गोद से
उछल-उछल कर रो रहे हैं—'पानी पानी !'
ऐसे में वह मृगतृष्णा का नीर भी
शर्म से शायद उड़ गया
यहां तक माताएं सूखे स्तनों को चुसाएं
हथेली पर थूक कर चटाएं
इन सब पर जब
नेताजी का आगमन होगा
तो आयोजन में
'कैम्पा कोला' का सिप होगा।

△

सम्पर्क सूत्र

1 अमर मवाड़ी चादपोल, बांसवाड़ा
2 भगवतीलाल व्यास 35 फतहपुरा मारवाड़ी उदयपुर
3 कुन्दनसिंह सजल उप निरीक्षक गगापुर पाटन सीकर
4 श्यामसुन्दर भारती फाहसागर जोधपुर
5 उमेश अपराधी सेवा, हिण्डौन सवाई माधोपुर
6 जनक राज पारीक ज्ञान ज्योति उ मा विद्यालय श्रीकरनपुर
7 मनमोहन झा प्र अ रा मा वि बागीदौरा बांसवाड़ा
8 भागीरथ भार्गव 88 आर्यनगर, अलवर
9 नमोनाथ अवस्थी भवर विलास, डौराव ी मोहल्ला, सवाई माधोपुर
10 कैलाश मनहर स्वामी मोहल्ला मनोहरपुर जयपुर
11 मीठेश निर्मोही राज नवीन उ मा विद्यालय जोधपुर
12 चान्द भारिल्ल शोभा चम्पानगर ब्यावर अजमेर
13 अब्दुल मलिक खान प्रेम रोड सिन्धी कॉलोनी भवानी मंडी
14 नमीचन्द दत्तात्रेय भारेश हिण्डौन, सवाई माधोपुर
15 रमेश मयक रा मा वि सिवाड़ बाड़मेर
16 माधव नागदा रा उ मा वि राजसमन्द उदयपुर
17 रामेश्वर दयाल श्रीमाली, प्र अ, रा मा वि मारवाड़
18 जितेन्द्रनाथ बजाड़ भीलवाड़ चित्तौड़गढ़
19 सावित्री परमार पालीवाल भवन खजानेवालों का रास्ता जयपुर
20 अरविन्द तिवारी रा मा वि जामनी नागौर
21 प्रेम प्रकाश व्यास रा मा वि बालोतरा
22 जितेन्द्र गो जै उ मा वि छाती सादड़ी
23 हेमराज शर्मा 'शिशु', फतह उ मा वि, उदयपुर
24 गुलाम मोहम्मद खुर्शीद', नकाश गेट के अन्दर नागौर
25 निशात द्वारा बसतलाल हेमराज पीलीबंगा, गगानगर
26 जगदीश शर्मा उज्ज्वल' बालभारती स्कूल के पास गगाशहर रोड बीकानेर
27 पुष्पलता कश्यप रा उ प्रा बालिका वि पर्दा पावटा, जोधपुर
28 केरोलाल जोमफ, प्रधानाध्यापिका खादू कॉलोनी बांसवाड़ा
29 गोपालप्रसाद मुद्गल पाण्डेय कॉलोनी डीग भरतपुर
30 मुरलीधर वैष्णव 'हारित', रा मा वि नमानी देवगढ उदयपुर
31 हरीश व्यास, गोपालगंज, प्रतापगढ

।

32 श्याम मनोहर व्यास, 15, पंचवटी, उदयपुर

33 ब्रजेन्द्र चचल, 481, शास्त्री नगर, दादाबाड़ी, कोटा

34 बुलाकीदास बावरा, बावरा निवास सूरसागर के पास बीकानेर

35 वासुदेव चतुर्वेदी, एस आई ई आर टी उदयपुर

36 सावर दइया, उप डाकघर के सामने जेल रोड बीकानर

37 चतुर कोठारी रा उ मा वि मावरा उदयपुर

38 शिलाव शर्मा, म न 47, हि दूपाडा, अलवर

39 पी राज निराग, रा मा वि आसोनरा बाडमर

40 नारायण कृष्ण 'अकेला' रा मा वि भटियानी चौहट्टा उदयपुर

41 मणि बावरा, रा नगर उ मा वि बासवाडा

42 दीनदयाल शर्मा, पुस्तकालयाध्यक्ष रा मा वि मक्कासर श्रीगगानगर

43 शशिबाला शर्मा रा बा मा वि सेरडा उदयपुर

44 विद्या पालीवाल, एफ 38 पोलो ग्राउण्ड उदयपुर

45 जयसिंह चौहान जौहरी सदन काव्य वीथिका कानोड, उदयपुर

46 कुणाल श्रीवास्तव, व्या पीरामल उ मा वि बगड, झूंझनू

47 सुरेन्द्र अचल कृष्णा कालोनी ब्यावर, अजमेर

48 नरेन्द्र साचीहर, श्री द्वारकाधीश मन्दिर के पीछे कांकरोली उदयपुर

49 अर्जुन अरविन्द काली पलटन रोड टोंक

50 प्रकाश तातेड व्या रा उ मा वि , आमेट, उदयपुर

51 वृज भटनागर व्या रा महिला शि प्रा वि , जस्सूसर गेट बीकानेर

52 वृजराज स्नेही रा मा वि डाडवाडी टोंक

53 योगेन्द्र भटनागर, प्र अ रा करणी उ मा वि , देशनोक, बीकानेर

54 सुशान्त 'सुमि , 13 बी ब्लॉक वाड न 3 श्रीकरणपुर

55 नेनाराम टाक शिक्षक, नयापुरा तालाब की पारी, सोजती गेट पाली

56 श्याम अश्याम, परियोजना अधिकारी प्रौढ शिक्षा जेल रोड बांसवाडा

57 रामनिवास सोनी कालीजी का चौक, लाडनू नागौर

58 त्रिलोक गोयल अग्रसेन नगर अजमेर

59 चन्द्रकला पारीक नाग ज्योति उ प्रा वि , श्रीकरणपुर

60 दिनेश विजयवर्गीय सी-215 रजतगृह कालोनी बूंदी

△
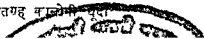
शिक्षक दिवस प्रकाशनो की सूची

वर्ष 1967 स 1973 तक इस योजना के अ तगत 31 सकलन प्रकाशित किये गये है। ये 31 प्रकाशन शिक्षा निदेशालय के प्रकाशन अनुभाग ने सम्पादित किये थे। 1974 से सकलनो का सम्पादन भारतीय ख्याति के लेखको से करवाया गया। तब से सम्पूर्ण सकलनो का विवरण इस प्रकार है—

1974 गाणनी बाँट दा' (कविता) स रामदेव आचार्य 'अपने आस पास' (कहानी) स मणि मधुकर 'रग रग बहुरग' (एकाकी) स डॉ राजानद, आँधी अर आस्था व 'भगवान महावीर' (दो राजस्थानी उपन्यास) स यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र' बारगडी (राजस्थानी विविधा) स वेद व्यास।

1975 अपने से बाहर अपने मे' (कविता) स मगत सक्सेना 'एक और अन्त रिक्ष (कहानी) स डा नवलकिशोर सभाव (राजस्थानी कहानी) स विजयदान देथा स्वर्ग भ्रष्ट' (उपन्यास) स भगवती प्रसाद व्यास स डा रामचरण मिश्र 'विविधा स राजेन्द्र शर्मा।

1976 इस बार (कविता) स नन्द चतुर्वेदी 'सकल्प स्वरो के' (कविता) स हरीश भादानी 'बरगद की छाया' (कहानी) स डॉ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय 'चेहरो के बीच' (कहानी व नाटक) स योगेन्द्र किसलय, 'माध्यम (विविधा) स विश्वनाथ सचदेव।

1977 'सृजन के आयाम' (निब ध) स डॉ देवीप्रसाद गुप्त, कथा (कहानी व लघु उपन्यास) स श्रवणकुमार चेते रा चितराम' (राजस्थानी विविधा) स डा नारायणसिंह भाटी समय के सदभ (कविता) स जुगमदिर तायल रग वितान (नाटक) स सुधा राजहस।

1978 "जैसे वे नाम सबि पत्र नही' (कहानी सकलन) स हिमाशु जोशी, 'तलाश' (राजस्थानी विविधा) स रावत सारस्वत रचेगा सगीत' (कविता सकलन) स नन्दकिशोर आचार्य 'दो गाँव (उपन्यास) लेखक मुबारक खान आजाद स डॉ आदश सक्सेना अभिव्यक्ति की तलाश (निबन्ध)

स डॉ रामगोपाल गोयल।

1979 'एक कदम आगे' (कहानी सकलन) स ममता कालिया 'लगभग (कविता सकलन) स लीलाधर जगूडी 'जीवन यात्रा का कालाज (हिन्दी विविधा) स डा जगदीश जोशी कोरणी कनम री' (राज विविधा) स अनाराम सुदामा, यह किताब बच्चो की' (बाल स स डॉ हरिकृष्ण देवसर।

1980 'पानी की लकीर (कविता सकलन) स अमृता प्रीतम, प्रयास' (सकलन) स शिवानी, मजूषा' (हिन्दी विविधा) स राकेश जन, रा आखर' (राजस्थानी विविधा) स नर्सिह राजपुरोहित, खिल गुलाब (बाल साहित्य) स जयप्रकाश भारती।

1981 'अधेरा का हिसाब' (कविता सकलन) स सर्वेश्वर दयाल सक्सेना से परे' (कहानी सकलन) स मन्नू भण्डारी, एक दुनिया बच्चो की साहित्य) स पुष्पा भारती, सिरजण (राजस्थानी विविधा) स जोधा 'वन्द मातरम्' (हिन्दी विविधा) स विवेकी राय।

1982 'धमक्षत्रे कुरुक्षेत्रे' (कहानी सकलन) स मृणाल पाण्डे 'कामी की तलाश और अन्य रचनायें (हिन्दी विविधा) स शिवरतन अपना अपना आकाश' (कविता सकलन) स जगदीश चतुर्वेदी (राजस्थानी विविधा) स कल्याण सिंह शखावत फूना क य रग साहित्य) लक्ष्मीचन्द्र गुप्त।

1983 'भीतर बाहर' (कहानी सकलन) स मृदुला गग रती के रा (हिन्दी विविधा) स प्रभाकर माचवे घायल मुट्ठी का दद (सकलन) स डॉ प्रकाश आतुर, पापुरिया माटी की' (बाल सा स कन्हैयालाल नन्दन हिवड रा उजास' (राजस्थानी विविधा) स नथमल जोशी।

1984 अपना-अपना दामन (कहानी सकलन) स मजुल भगत, 'वस्तु (कविता सकलन) स गिरधर राठी, सचयनिका (विविधा) स यान गुरु 'फूल सारू पासडो' (राजस्थानी) स शक्तिदान कविया, सार तुम्हारे हैं' (बाल साहित्य) स स्नेह अग्रवाल।

1985 रास्त अपने अपन (कहानी सग्रह) स राजेन्द्र अवस्थी, 'सुना अं रत की' (कविता सग्रह) स बलदेव वशी, 'बबूल की महक (बाल सा स मस्तराम कपूर, 'मरु अचल के फूल' (हिन्दी विविधा) स कमल गोयनका, 'माणक कोष' (राजस्थानी विविधा) स मनोहर शर्मा।

1986 'ढाई अक्खर' (कहानी सग्रह) स आलमशाह खान, रत क

(कविता सग्रह) स प्रकाश जन, रतन रतन' (बाल साहित्य) म मनोहर प्रभाकर 'बूद बूद स्याही, (हिन्दी विविधा) स पुरुषोत्तमलाल तिवारी, गत रा हेल' (राजस्थानी विविधा) म हीरालाल माहेश्वरी । □